गोरा

अध्याय 13

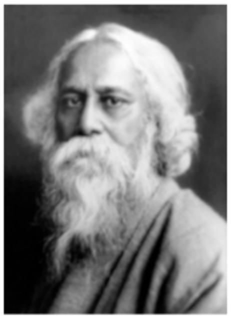

रविंद्रनाथ टैगोर

गोरा

अध्याय 13

https://www.hindiadda.com/gora-part-xiii/

हरिमोहिनी दूसरे दिन सबेरे भी भूमि पर बैठकर परेशबाबू को प्रणाम करने लगीं। हड़बड़ाकर हटते हुए बोले, "यह आप क्या कर रही हैं?"

ऑंखों में ऑंसू भरते हुए हरिमोहिनी ने कहा, "मैं आपका ऋण कई जन्मों में भी नहीं चुका सकूँगी। मेरे-जैसी इतनी निरुपाय स्त्री का जो उपाय आपने कर दिया, वह और कोई न कर सकता। चाहकर भी मेरा भला कोई नहीं कर सकता, यह मैंने देखा है- आप पर भगवान का बड़ा अनुग्रह है इसीलिए आप मुझ-जैसी अभागिन पर अनुग्रह कर सके हैं।"

परेशबाबू ने संकोच करते हुए कहा, "मैंने तो खास कुछ नहीं किया, यह सब तो राधारानी.... "

बात काटकर हरिमोहिनी ने कहा, "वह तो मैं जानती हूँ-लेकिन राधारानी ही तो आपकी है- वह जो करती हैं, वह आप ही का किया हुआ तो है। उसकी माँ जब मरी, जब बाप भी नहीं रहे, तब मैंने सोचा था लड़की बड़ी अभागिनी है। लेकिन उसके भाग्य के दु:ख को भगवान ऐसे धन्य कर देंगे यह मैं कैसे जानती? घूम-फिरकर अंत में जब आपको देखा तब से समझने लगी हूँ कि भगवान ने मुझ पर भी दया की है।"

"मौसी, माँ है तुम्हें लेने के लिए.... " कहता हुआ विनय आ खड़ा हुआ। हड़बड़ाकर उठते हुए सुचरिता ने कहा, "कहाँ हैं?"

विनय ने कहा, "नीचे आपकी माँ के पास बैठी हैं।"

जल्दी से सुचरिता नीचे चली आई।

हरिमोहिनी से परेशबाबू ने कहा, "मैं ज़रा आपके घर में सब सामान ठीक-ठाक कर आऊँ!"

परेशबाबू के चले जाने पर चकित विनय ने कहा, 'मौसी, आपके घर की बात तो मैं नहीं जानता था।"

हरिमोहिनी ने कहा, "मैं भी कहाँ जानती थी, बेटा? जानते थे केवल परेशबाबू! हमारी राधारानी का घर है।"

सारी बात सुनकर विनय ने कहा, "मैंने सोचा था, दुनिया में विनय किसी के तो कभी काम आ सकेगा-वह भी रह गया। आज तक माँ के लिए तो कुछ कर नहीं सका, जो

कुछ करने को था वह माँ ही मेरे लिए करती रही हैं- मौसी के लिए भी कुछ नहीं कर सकूँगा, उनसे भी प्राप्त करूँगा। मेरी किस्मत में लेना ही लेना लिखा है, कुछ देना नहीं।"

कुछ देर बाद ही ललिता और सुचरिता के साथ आनंदमई आ गईं। हरिमोहिनी ने आगे बढ़कर कहा, "भगवान जब दया करते हैं तब फिर कंजूसी नहीं करते- दीदी, आज मैं तुम्हें भी पा गई।" कहते हुए हाथ पकड़कर उन्होंने आनंदमई को चटाई पर बिठाया।

हरिमोहिनी ने कहा, "दीदी, तुम्हारी बात के सिवाय विनय कोई बात ही नहीं करता।"

हँसकर आनंदमई ने कहा, "बचपन से उसे यही रोग है, जो बात पकड़ लेता है। छोड़ता ही नहीं। जल्दी ही मौसी की बारी भी आ जाएगी।"

विनय ने कहा, "वह तो होगा ही, पहले से ही मैं कहे रखता हूँ। मैंने बड़े होकर अपने आप मौसी को ढूँढ़ निकाला है, इतने दिन जो वंचित रहा उसकी किसी तरह कमी तो पूरी करनी होगी।"

ललिता की ओर देखते हुए मुस्कराकर आनंदमई ने कहा, "हमारे विनय को जिस चीज़ की कमी हो वह उसे ढूँढ़ लेना भी जानता है, और ढूँढ़ लेने पर जी-जान से प्यार करना भी जानता है। तुम लोगों को वह किस दृष्ि से देखता है यह मैं ही जानती हूँ- जो कभी सोच भी नहीं सकता था मानो वह सामने पा गया है। उसकी जान-पहचान तुम लोगों से हो जाने से मुझे कितनी कितनी खुशी हुई है, यह तुम्हें क्या बताऊँ, बेटी! तुम लोगों के यहाँ विनय का मन ऐसा बस जाने से उसका बड़ा भला हुआ है। यह बात वह अच्छी तरह समझता है, और स्वीकार करने से भी नहीं हिचकता।"

जवाब में कुछ कहने की कोशिश करके भी ललिता कोई बात नहीं पा सकी। उसका चेहरा लाल हो गया। ललिता की मुश्किल देखकर सुचरिता ने कहा, "विनय बाबू हर किसी के भीतर की अच्छाई देख लेते हैं, इसीलिए जिसमें जितनी भलाई होती है वही उनके हिस्से आ जाती हैं यह बहुत-कुछ उनका निजी गुण है।"

विनय ने कहा, "माँ, विनय को बातचीत करने के लिए तुम जितना बड़ा विषय समझती हो, दुनिया की दृष्टि में उसका महत्व नहीं है। यह बात तुम्हे समझाने की मैं कई बार सोचता हूँ, लेकिन अहंकारवश ही अभी तक नहीं कर पाया। लेकिन अब बस-अब विनय की बात छोड़कर और कुछ बात की जाय।"

ठीक इसी समय सतीश अपने कुत्ते के पिल्ले को छाती से चिपटाए उछलता-कूदता आ पहुँचा। हरिमोहिनी ने घबराकर कहा, "बेटा सतीश, तू बड़ा राजा बेटा है, इस कुत्ते को बाहर ले जा।"

सतीश बोला, "वह कुछ नहीं करेगा, मौसी-तुम्हारे कमरे में नहीं जाएगा! तुम उसे ज़रा प्यार कर लो, वह कुछ नहीं कहेगा।"

हरिमोहिनी ने और भी दूर हटते हुए कहा, "नहीं बेटा नहीं- उसे ले जाओ।"

तब कुत्ते समेत सतीश को आनंदमई ने अपनी ओर खींच लिया। कुत्ते को गोद में लेते हुए आनंइदमई ने पूछा, "तुम सतीश हो न- हमारे विनय के दोस्त?"

अपने को विनय का दोस्त कहकर परिचय देना सतीश को ज़रा भी असंगत न लगता था, इसलिए उसके झिझक बिना कहा, "हाँ।" और आनंदमई के चेहरे की ओर देखता रहा।

आनंदमई ने कहा, "मैं विनय की माँ होती हूँ।"

पिल्ला आनंदमई के हाथ का कड़ा चबाने के खेल से अपना मनोरंजन करने लगा। सुचरिता ने कहा, "बक्त्यार, माँ को प्रणाम कर!"

सकपकाकर सतीश ने जैसे-तैसे प्रणाम कर दिया।

इतने में वरदासुंदरी आ गई। उन्होंने हारमोहिनी की ओर देखे बिना आनंदमई से पूछा, "आप क्या हमारे यहाँ कुछ खाएँगी?"

आनंदमइ ने कहा, "हालाँकि खान-पान और छूत-छात के बारे में कुछ सोच-विचार नहीं करती, लेकिन आज रहने दीजिए- गोरा लौट आए तब कभी खाऊँगी।"

गोरा की अनुपस्थिति में आनंदमई ऐसा कोई काम नहीं करना चाहती थीं जो गोरा को अच्छा न लगे।

विनय की ओर देखकर वरदासुंदरी ने कहा, "अरे, विनय बाबू भी तो यहाँ हैं। मैं भी कहूँ आप क्यों नहीं आए!"

विनय ने फौरन कहा, "मैं जो आया हूँ तो आप समझती हैं कि आपको बताए बिना ही चला जाता?"

वरदासुंदरी ने कहा, "कल निमंत्रण के समय तो आप खिसक गए; आज चलिए, बिना निमंत्रण के ही खा लीजिएगा।"

विनय ने कहा, "मुझे तो वही ज्यादा रुचेगा। तनख्वाह से बख्शीश का आकर्षण अधिक हैं।"

मन-ही-मन हरिमोहिनी को आश्चर्य हुआ। विनय उस घर में खाता-पीता है, आनंदमई भी खान-पान का विचार नहीं करतीं, यह उन्हें अच्छा नहीं लगा।

वरदासुंदरी के चले जाने पर हरिमोहिनी ने सकुचाते हुए पूछा, "दीदी, तुम्हारे स्वामी क्या.... ?"

आनंदमई ने कहा, "मेरे स्वामी कट्टर हिंदू हैं।"

हरिमोहिनी अवाक् बनी रहीं। उनके मन का भाव समझकर आनंदमई ने कहा, "बहन, मेरे लिए जब तक समाज सबसे बड़ा था तब तक समाज को ही मानकर चलती थी। लेकिन एक दिन भगवान एकाएक मेरे घर में ऐसे रूप में प्रकट हुए कि समाज को उन्होंने मुझे और नहीं मानने दिया। जब उन्होंने स्वयं आकर मेरी जात छीन ली तब मुझे और किसी का क्या भय!"

इस बात का अर्थ हरिमोहिनी नहीं समझ सकीं। बोलीं, "और तुम्हारे स्वामी?"

आनंदमई ने कहा, "मेरे स्वामी नाराज़ होते हैं।"

हरिमोहिनी, "और लड़के?"

आनंदमई, "लड़के भी खुश नहीं हैं, लेकिन उन्हें खुश करके भी क्या होगा? बहन, मेरी यह बात किसी की समझ में नहीं आ सकती- जो सब जानते हैं वही समझते हैं।" कहते-कहते हाथ जोड़कर आनंदमई ने प्रणाम किया।

हरिमोहिनी ने सोचा-शायद कोई मिशनरी औरत आकर आनंदमई को फुसलाकर ख्रिस्तान बना गई है।-उनका मन एक गहरे संकोच से भर उठा।

यह बात सुनकर सुचरिता को बड़ी तसल्ली हुई थी कि वह परेशबाबू के घर के पास ही और बराबर उनकी देख-रेख में रह सकेगी। किंतु जब उसके नए घर की सजावट का कार्य पूरा हो गया और वहाँ चले जाने का समय आ गया, तब सुचरिता के मन में रह-रहकर एक टीस उठने लगी। बात केवल पास रहने या न रहने की नहीं है, जीवन

के साथ जीवन का जो सर्वांगीण योग था उसमें इतने दिन बाद आज एक विच्छेद घटित होने जा रहा है। यह सोचकर सुचरिता को ऐसा लग रहा था जैसे उसके एक अंश की मृत्यु होने वाली हो। सुचरिता का इस परिवार में जितना भी स्थान था,उसका जो कुछ भी काम था, नौकरों से भी उसका जितना संपर्क था, सभी सुचरिता के हृदय को व्याकुल करने लगे।

सुचरिता का अपना निजी भी कुछ है, और उसी के सहारे वह आज स्वाधीन होने जा रही है, इस खबर से वरदासुंदरी बार-बार यही भाव प्रकट करने लगीं कि यह अच्छा ही हुआ; इतने दिनों से इतनी सावधानी से जो उत्तरदायित्व वह निबाहती आ रही थीं उससे मुक्त होकर वह निश्चिंत ही हुई है। लेकिन सुचरिता के प्रति मन-ही-मन उनमें एक शिकायत का भाव भी उत्पन्न हुआ। आज सुचरिता उनसे अलग होकर अपने भाग्य के सहारे खड़ी हो सकती है, यह जैसे उसका एक अपराध है। उनके सिवा सुचरिता की ओर कोई गति नहीं है, यह सोचकर वरदासुंदरी कई बार सुचरिता को अपने परिवार के लिए संकट मानकर स्वयं अपने ऊपर करुणा करती रही हैं। लेकिन सहसा यह सूचना पाकर कि उन्हें सुचरिता के भार से छुटकारा मिल गया है, उन्हें ज़रा भी अच्छा नहीं लगा। सुचरिता के लिए उनका आश्रय आवश्यक नहीं है, यह जानकर सुचरिता घमंड करने लग सकती है। उनकी अनुगत रहना अपने लिए अनावश्यक समझ सकती है, यह सोचकर उन्होंने पहले से ही उसे अपराधी ठहरा दिया। पहले जैसे वह घर के काम-काज के समय सुचरिता को बुलाती थी, उसे बिल्कुल भूलकर अस्वाभाविक ढंग से वह उसके प्रति सम्मान दिखाने लगीं। विदा होने से पहले मन-ही-मन दु:खित होकर सुचरिता वरदासुंदरी के घर के काम-काज में कुछ ज्यादा ही हाथ बँटाने की कोशिश कर रही थी, तरह-तरह के बहाने करके उनके आसपास घूमती रहती थी। किंतु वरदासुंदरी कुछ ऐसा भाव दिखाकर कि कहीं सुचरिता का असम्मान न हो जाए, उसे दूर ही दूर रखती थीं। इतने दिनों से सुचरिता जिन्हें माँ कहती हुई जिनके पास रहकर बड़ी हुई है, आज विदा के समय भी अपने मन को उन्होंने प्रतिकूल कर लिया, इसकी पीड़ा सुचरिता को सबसे अधिक कष्ट दे रही थी।

हर समय लावण्य, ललिता और लीला सुचरिता के आसपास मँडराती रहतीं। सुचरिता का नया घर सजाने वे बड़े उत्साह से गईं, लेकिन उस उत्साह के भीतर मानो अव्यक्त वेदना के आँसू छिपे हुए थे।

सुचरिता अनेक बहाने करके अब तक परेशबाबू के कई छोटे-मोटे काम करती आई थी। फूल दोनों में फूल सजाना, मेज़ पर किताबें सँवारना,बिस्तर धूप में फैलाना, स्नान के समय उन्हें पानी रखे जाने की सूचना देना- इन सब नित्य के अभ्यस्त कामों को उसने कभी कोई विशेष महत्व नहीं दिया था। लेकिन इन्हीं सब अनावस्यक कामों को छोड़कर चले जाने का समय आ जाने पर ये सब छोटी-छोटी सेवाएँ ही, जिन्हें किसी एक के बदले सहज ही कोई दूसरा कर सकता है, और जिनके न करने से भी किसी की कोई विशेष हानि नहीं होती, दोनों पक्षों के मन में कसकने वाली हो गई थीं। सुचरिता परेशबाबू के कमरे में कोई मामूली-सा काम करने भी आती तो वह काम परेशबाबू के लिए बड़ा हो जाता ओर उनकी छाती भर उठती। दूसरी ओर, यह सोचकर कि यही काम अब से किसी दूसरे के हाथों संपन्न हुआ करेगा, सुचरिता की ऑंखें छलछला उठतीं।

जिस दिन दोपहर के भोजन के बाद सुचरिता के अपने नए घर में चले जाने की बात तय थी, उस दिन सबेरे परेशबाबू अपने एकांत कमरे में उपासना करने गए तो उन्होंने देखा, उनके सामने का स्थान फूलों से सजाकर सुचरिता कमरे के एक कोने में प्रतीक्षा करती हुई बैठी है। लावण्य,लीला वगैरह भी आज उपासना में आएँगी, ऐसी उन्होंने मंत्रणा की थी, लेकिन ललिता ने उन्हें रोक दिया था। ललिता जानती थी कि परेशबाबू की उपासना में अकेली योग देकर सुचरिता को उनका आशीर्वाद पाकर विशेष आनंद होगा। आज सुचरिता उस आशीर्वाद के लिए विशेष उत्सुक होगी यह अनुभव करके ललिता ने उन्हें आज की उपासना की निर्जनता भंग करने से रोक दिया।

उपासना पूरी हो गई। सुचरिता की ऑंखों से अश्रु झर रहे थे। परेशबाबू ने कहा, "बेटी, पीछे की ओर मत देखो, सामने के मार्ग पर बढ़ती जाओ- मन में कुछ संकोच मत करो। जो भी घटे, जो भी सामने उपस्थित हो, उसमें से अपनी सारी शक्ति से अच्छाई को ग्रहण करने का संकल्प करके आनंदपूर्वक चल पड़ो। संपूर्ण रूप से ईश्वर को आत्म-समर्पण करके एक मात्र उसी को अपना सहायक मानो-तब भूल-चूक और क्षति के बीच भी लाभ का रास्ता पाती रह सकोगी। और यदि अपने को आधा-आधा बाँटना चाहोगी- थोड़ा-सा ईश्वर को और थोड़ा-सा कहीं और और-तब सभी कुछ मुश्किल हो जाएगा। ईश्वर ऐसा ही करें कि हम लोगों के इस क्षुद्र सहारे का भी तुम्हारे लिए प्रयोजन न करें।"

दोनों ने उपासना के बाद बाहर आकर देखा कि बैठने के कमरे में हरानबाबू प्रतीक्षा कर रहे हैं। किसी के प्रति आज वह कोई विरोध-भाव मन में नहीं आने देगी, यह ठानकर सुचरिता ने हरानबाबू को नम्र भाव से नमस्कार किया। फौरन हरानबाबू कुर्सी पर सख्त होकर बैठ गए ओर अत्यंत गंभीर स्वर से बोले, "सुचरिता, इतने दिनों तुम जिस सत्य के आश्रय में थीं आज उससे वंचित होने जा रही हो, हम लोगों के लिए आज शोक का दिन है।"

सुचरिता ने कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन उसके मन में शांति की जो करुणा मिश्रित रागिनी बज रही थी एक बेसुरा स्वर भी उसमें आ मिला।

परेशबाबू ने कहा, "कौन पा रहा है और कौन वंचित हो रहा है, यह तो अंतर्यामी ही जानते हैं, हम लोग बाहर से विचार करके व्यर्थ बेचैन होते हैं।"

हरानबाबू बोले, "तो आप क्या यह कहना चाहते हैं कि आपके मन में कोई आशंका नहीं है? और यह कि ऐसी भी कोई बात नहीं हुई जिस पर आपको अनुताप हो?"

परेशबाबू ने कहा, "पानू बाबू, मैं काल्पनिक आशंका को मन में स्थान नहीं देता। और अनुताप करने की कोई बात हुई है या नहीं, यह तो तभी जानूँगा जब अनुताप होगा।"

हरानबाबू ने कहा, "यह जो आपकी कन्या ललिता अकेली विनय बाबू के साथ स्टीमर में चली आई, क्या यह भी काल्पनिक है?"

सुचरिता का मुँह लाल हो गया। परेशबाबू ने कहा, "पानू बाबू, आपका मन इस समय किसी कारण से उत्तेजित है, इसलिए इस समय इस संबंध में आपसे बातचीत करना आप ही के प्रति अन्याय होगा।"

सिर उठाकर हरानबाबू ने कहा, "मैंने उत्तेजना की झोंक में कोई बात नहीं कही- मैं जो कह रहा हूँ उसके बारे में अपनी ज़िम्मेदारी का मुझे पूरा ज्ञान है, आप उसकी फिक्र न करें। जो कुछ आपसे कह रहा हूँ व्यक्तिगत अपनी ओर से नहीं कह रहा, ब्रह्म-समाज की ओर से ही कह रहा हूँ- न कहना अन्याय होगा इसीलिए कह रहा हूँ। अगर आप अंधे न हुए रहते तो यह जो विनय बाबू के साथ ललिता अकेली चली आई, इसी एक घटना से समझ सकते थे कि आपका यह परिवार ब्रह्म-समाज का बंधन तोड़कर भ्रष्ट हो जाने वाला है। इसका केवल आप ही को अनुताप करने का कारण मिले सो बात नहीं है, इसमें सारे ब्रह्म-समाज के अपमान की बात है।"

परेशबाबू ने कहा, "बुराई तो बाहर से की जा सकती है, लेकिन न्याय करने के लिए भीतर पैठना होता है। केवल घटना के कारण किसी को अपराधी न ठहरा दें।"

हरानबाबू ने कहा, "घटना आखिर यों ही तो घटित होती, उसे आप लोग भीतर से ही घटित किए दे रहे हैं। आप ऐसे-लोगों को आत्मीय बनाकर परिवार में ला रहे हैं जो आपके परिवार को ही आपके आत्मीय समाज से दूर ले जाना चाहते हैं। बल्कि दूर ले भी गए, यह क्या आप नहीं देख रहे हैं?"

कुछ विरक्त होकर परेशबाबू ने कहा, मेरा देखने का ढंग आपके ढंग से मेल नहीं खाता।"

हरानबाबू बोले, "न खाता होगा मेल। किंतु मैं सुचरिता को ही साक्षी मानकर पूछता हूँ, वही सच-सच बता दें कि विनय का ललिता के साथ जो संबंध है वह क्या बिल्कुल बाहर का ही संबंध है? क्या उसने उनके अंतर को ज़रा भी नहीं छुआ? नहीं, सुचरिता, तुम्हारे चले जाने से नहीं होगा- इस बात का जवाब देना ही होगा। यह बड़ी गंभीर बात है।"

सुचरिता ने सख्त पकड़कर कहा, "चाहे जितनी गंभीर हो, आपका तो इसमें कोई दख़ल नहीं है।"

हरानबाबू ने कहा, "यदि दख़ल न होता तो न केवल मैं चुप ही रहता बल्कि इस बारे में सोचता भी नहीं। तुम लोगों को समाज की परवाह नहीं हो सकती है, लेकिन जब तक समाज में हो तब तक समाज तुम लोगों के मामले में विचार करने को मजबूर हैं।"

आँधी की तरह ललिता ने प्रवेश करते हुए कहा, "अगर समाज ने आप ही को विचारक के पद पर नियुक्त किया है, तब तो इस समाज से निर्वासित होना ही हम लोगों के लिए बेहतर है।"

कुर्सी पर से उठकर खड़े होते हुए हरानबाबू ने कहा, "ललिता, तुम आ गईं यह अच्छा ही हुआ। तुम्हारे बारे में जो अभियोग है उस पर तुम्हारे सामने ही विचार होना चाहिए।"

गुस्से से सुचरिता का चेहरा और आँखें जल उठीं। उसने कहा, "हरानबाबू, अपनी कचहरी अपने घर कीजिएगा। किसी गृहस्थ घर में घुसकर उसका अपमान करें, हम लोग आपका यह अधिकार किसी तरह नहीं मानेंगे। चल ललिता, चल यहाँ से!"

ललिता नहीं हिली। बोली, "नहीं दीदी, मैं भागूँगी नहीं। पानू बाबू को जो कुछ कहना है सब सुनकर ही मैं जाना चाहती हूँ। कहिए, आपको क्या कहना है, कह डालिए!"

हरानबाबू सन्नाटे में आ गए। परेशबाबू ने कहा, "बेटी ललिता, आज हमारे घर से सुचरिता जा रही है-मैं आज किसी तरह की अशांति होने देना नहीं चाहता। हरानबाबू, हम लोगों का अपराध चाहे जितना गंभीर हो, आज-भर के लिए आपको हमें माफ कर देना होगा।"

हरानबाबू चुपचाप गंभीर होकर बैठे रहे। सुचरिता जितना ही उनसे विमुख होती थी, सुचरिता को बाँध रखने का उनका हठ उतना ही बढ़ता जाता था। उनका अटल विश्वास था कि अपने असाधारण नैतिक बल के कारण उनकी जीत अवश्य होगी। अब भी उन्होंने पतवार छोड़ दी हो, ऐसा नहीं था;लेकिन इस आशंका से उनका मन क्षुब्ध था कि मौसी के साथ सुचरिता के दूसरे मकान में चले जाने पर वहाँ उनकी शक्ति में कुछ कमी आ जाएगी। इसीलिए आज वह अपने सब ब्राह्मास्त्रों को सान पर चढ़ाकर लाए थे। किसी तरह आज सबेरे ही बड़ी कड़ाई से कुछ निबटारा कर लेने की उन्होंने ठान रखी थी। आज उन्होंने सब संकोच छोड़ दिया था- लेकिन दूसरा पक्ष भी इसी तरह संकोच को दूर कर देगा, ललिता और सुचरिता भी सहसा म्यान में से तलवार निकालकर खड़ी हो जाएँगी, इसकी उन्होंने कल्पना नहीं की थी। उन्होंने यह सोच रखा था कि जब वह अपने प्रबल नैतिक अग्नि-बाण छोड़ेंगे तब दूसरे पक्ष का सिर फौरन झुक जाएगा। ठीक वैसा नहीं हुआ, और अवसर भी निकल गया। लेकिन हरानबाबू हार मानने वाले नहीं थे। मन-ही-मन उन्होंने कहा, सत्य की जय होगी ही- अर्थात् हरानबाबू की जय होगी ही। लेकिन जय यों ही तो नहीं हो जाती- लड़ना तो होगा ही। सो हरानबाबू कमर कसकर मैदान में उतर आए थे।

सुचरिता ने कहा, "मौसी, आज मैं सबके साथ बैठकर खाऊँगी- तुम कुछ बुरा मत मानना।"

हरिमोहिनी चुप ही रही। मन-ही-मन उन्होंने तय कर लिया था कि सुचरिता सम्पूर्णतया उनकी हो गई है- विशेष रूप से जब वह अपनी संपत्ति के बल पर स्वाधीन होकर अलग घर चलाने लगेगी- और अब हरिमोहिनी को और कोई संकोच

नहीं करना होगा, सोलह आने अपने मतानुसार वह चल सकेंगी। इसीलिए संकोच नहीं करना होगा, सोलह आने अपने मतानुसार वह चल सकेंगी। इसीलिए जब सुचरिता ने शुचिता खोकर फिर सबके साथ बैठकर खाने का प्रस्ताव किया तब उन्हें अच्छा नहीं लगा- पर वह चुप ही रहीं।

उनमें मन का भाव समझकर सुचरिता ने कहा, "तुम निश्चय जानों मौसी, ठाकुर इससे प्रसन्न हांगे। मेरे अंतर्यामी ठाकुर ने ही आज मुझे सबके साथ बैठकर खाने को कहा है। उनकी बात न मानने से वह नाराज़ होंगे। और उनके क्रोध से तो मैं तुम्हारे क्रोध से ी अधिक डरती हूँ।"

जब तक वरदासुंदरी के हाथों हरिमोहिनी अपमानित होती रहती थीं तब तक उनके अपमान में हिस्सा बँटाने के लिए सुचरिता ने उनका आचार अपना रखा था, किंतु अब उस अपमान से छुटकारा मिल जाने पर, सुचरिता को आचार के संबंध में स्वाधीन होने में दुविधा नहीं रही, यह बात हरिमोहिनी नहीं समझ सकीं। सुचरिता को हरिमोहिनी पूरी तरह नहीं समझ सकी थी, और समझना भी उनके लिए कठिन था।

सुचरिता को हरिमोहिनी ने साफ-साफ मना तो नहीं किया, लेकन मन-ही-मन नाराज़ हुईं। सोचने लगीं- मैंया री, कैसे उसकी प्रवृत्ति उधर हो सकती है मैं तो सोच ही नहीं सकती। ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर.... !"

उन्होंने थोड़ी देर चुप रहने के बाद कहा, "एक बात कहूँ बेटी, तुम जो करो सो तो करो, लेकिन उस बैरे के हाथ का पानी मत पीना।"

सुचरिता ने कहा, "क्यों मौसी, वही रमादीन बैरा तो आपकी गाय दुहकर तुम्हारे लिए दूध दे जाता है।"

ऑखें बड़ी-बड़ी करके हरिमोहिनी ने कहा, "तू हद करती है। दूध और पानी क्या समान हैं?"

हँसकर सुचरिता ने कहा, "अच्छा मौसी, मैं रामदीन का छुआ पानी आज नहीं पीऊँगी। लेकिन अगर तुमने सतीश को रोका तो वह इससे ठीक उल्टा ही करेगा।"

हरिमोहिनी ने कहा, "सतीश की बात अलग है।"

हरिमोहिनी मानती थीं कि नियम-संयम की चूक पुरुषों के मामले में माफ करनी ही पड़ती है।

हरानबाबू लड़ाई के मैदान उतर आए।

स्टीमर में विनय के साथ आए हुए ललिता को प्राय: पंद्रह दिन हो गए थे। दो-एक जनों के कानों मे यह बात पड़ चुकी थी और धीरे-धीरे फैल रही थी। लेकिन अब दो ही दिन में यह समाचार फूस में लगी आग की तरह चारों ओर फैल गया।

काफी लोगों को हरानबाबू ने यह समझाया कि ब्रह्म-समाज के धर्मपूर्ण नैतिक जीवन को ध्यान में रखते हुए इस ढंग के कदाचार का दमन करना उनका परम कर्तव्य है। वैसे ऐसी बातें समझाने के लिए अधिक मेहनत भी नहीं करनी पड़ती। जब हम 'सत्य के अनुरोध', से 'कर्तव्य के अनुरोध' से प्रेरित होकर दूसरों की गलती पर घृणा प्रकट करने का दंड का विधान करने को तैयार होते हैं, तब सत्य और कर्तव्य के अनुरोध को मानना हमारे लिए बहुत कठिन नहीं होता। इसीलिए जब हरानबाबू के ब्रह्म-समाज में 'अप्रिय' सत्य की घोषणा की और 'कठोर' कर्तव्य की बात उठाई, तब इतनी बड़ी अप्रियता और कठोरता के डर से भी अधिकतर लोग उत्साहपूर्वक उनकी मदद करने से न हिचकिचाए। ब्रह्म-समाज के हितैषी लोग गाड़ी-पालकी किराए पर लेकर भी एक-दूसरे के घर जाकर कह आए कि आजकल जब ऐसी-ऐसी बातें होनी शुरू हो गई है तब ब्रह्म-समाज का भविष्य बहुत अंधकारपूर्ण है। साथ ही तरह-तरह से अलंकृत होकर यह बात भी फैलने लगी कि सुचरिता हिंदू हो गई है और हिंदू मौसी के घर आश्रय लेकर जप-तप, यज्ञ-अनुष्ठान ठाकुर-पूजा में ही दिन बिताने लगी है।

ललिता के मन में कई दिन से एक लड़ाई चल रही थी। रोज़ रात को सोने जाने से पहले वह कहती, "मैं कभी नहीं मानूँगी' और रोज़ सबरे नींद खुलते ही बिस्तर पर बैठे-बैठे दुहराती थी, 'कभी किसी तरह हार नहीं मानूँगी।' यह जो विनय की चिंता उसके पूरे मन पर छाई हुई थी, विनय निचले कमरे में बैठा बातचीत कर रहा है, यह सुन पाते ही उसके मन में एक खलबली मच जाती थी, दो दिन लगातार विनय के उनके घर न आ पाने पर वह जैसे रूठकर अपने को ही सताने लगती थी, बीच-बीच में कई बहानों से सतीश को विनय के घर जाने के लिए प्रोत्साहित करती थी और उसके लौटने पर विनय क्या कर रहा था तथा उससे क्या बात हुई, इसका पूरा ब्यौरा जानने की चेष्टा करती थी- इन सबके लिए ललिता जितना ही अपने को विवश पाती, उतना ही अपनी हार की ग्लानि उसे और बेचैन कर देती। कभी-कभी उसे इस बात पर भी

गुस्सा हो आता कि परेशबाबू ने विनय और गोरा के साथ क्यों उनके मेल-मिलाप में बाधा नहीं दी। लेकिन वह आखिर तक लड़ती ही रहेगी, मर जाएगी पर हारेगी नहीं, यही उसकी प्रतिज्ञा थी। उसका जीवन कैसे कटेगा, इस संबंध में उसके मन में तरह-तरह की कल्पनाएँ उदित होती रहती थीं। यूरोप की लोक हितैषिणी स्त्रियों के जीवन-चरित्र और कीर्ति की जो सब बातें उसने पढ़ रखी थीं, वे सब सवयं उसके लिए साध्य और संभव हैं, ऐसा उसे लगने लगा था।

उसने एक दिन जाकर परेशबाबू से कहा, "बाबा, मैं क्या किसी लड़कियों के स्कूल में पढ़ाने का काम नहीं कर सकती?" स्थिर दृष्टि से परेशबाबू ने अपनी लड़की के चेहरे की ओर देखा। उसकी दो करुण आँखें जैसे हृदय की अतृप्ति की वेदना के कारण कंगाल-सी होकर यह प्रश्न पूछ रही थीं। उन्होंने स्निग्ध स्वर से कहा, "क्यों नहीं कर सकती, बेटी? लेकिन लड़कियों का ऐसा स्कूल है कहाँ?"

जिस समय का जिक्र हो रहा है उस समय लड़कियों के स्कूल अधिक नहीं थे; साधारण पाठशालाएँ थीं और भद्र घरों की लड़कियों ने अभी मास्टरनी का काम करना शुरू नहीं किया था। ललिता ने उदास होकर कहा, "स्कूल नहीं है, बाबा?"

परेशबाबू ने कहा, "कहाँ, मैंने तो नहीं देखा!"

ललिता ने कहा, "अच्छा बाबा, लड़कियों का स्कूल क्या शुरू नहीं किया जा सकता?"

परेशबाबू ने कहा, "काफी खर्च का मामला है, और बहुत लोगों की मदद की भी ज़रूरत पड़ेगी।"

ललिता यही समझती थी कि अच्छे काम का संकल्प कर लेना ही कठिन है। उसके साधन जुटाने के मार्ग में भी इतनी बाधाएँ होंगी यह उसने नहीं सोचा था। थोड़ी देर वह चुपचाप बैठी रही, फिर उठकर धीरे-धीरे चली गई। अपनी इस सबसे चहेती बेटी के हृदय में कहाँ कौन-सी व्यथा है,परेशबाबू बैठकर यही सोचने लगे। हरानबाबू विनय के बारे में उस दिन जो इशारा कर गए थे, वह भी उन्हें याद आया। उन्होंने लंबी साँस लेकर अपने आप से पूछा- मैंने क्या नासमझी का काम किया है? अपनी किसी दूसरी लड़की की बात होती तो उन्हें विशेष फिक्र नहीं होती, लेकिन मानो ललिता का जीवन ललिता के लिए बहुत ही सच्चा पदार्थ है, वहाँ अधूरी बात करना वह जानती ही नहीं। उसके लिए सुख-दु:ख, आधे सत्य और आधे झूठ नहीं होते।

अपने जीवन में ललिता प्रतिदिन यह व्यर्थ का धिक्कार सहती हुई कैसे जी सकेगी? उसके सामने कहीं कोई प्रतिष्ठा, कोई मंगल परिणाम नहीं दीखता, और इस तरह निरुपाय बहते चले जाना भी उसके स्वभाव में नहीं है।

ललिता उसी दिन तीसरे पहर सुचरिता के घर जा पहुँची। सुचरिता के घर में सजावट कुछ खास नहीं थी। फर्श पर एक मामूली दरी, जिसके एक तरफ सुचरिता का बिस्तर लगा था और दूसरी तरफ हरिमोहिनी का। हरिमोहिनी खाट पर नहीं सोती, इसलिए एक ही कमरे में सुचरिता भी उनके साथ फर्श पर ही बिस्तर लगाती है। दीवार पर परेशबाबू का चित्र टँगा था। साथ के छोटे कमरे में सतीश की खाट पड़ी थी और एक तरफ एक छोटी मेज़ पर कलम-दवात, किताब-कापियाँ तथा स्लेट आदि इधर-उधर बिखरी हुई थीं। सतीश स्कूल गया हुआ था, घर में नीरवता थी।

हरिमोहिनी भोजन के बाद अपनी चटाई पर लेटी सोने की तैयारी कर रही थीं और सुचरिता पीठ पर खुले बाल फैलाए दरी पर बैठी हुई गोद में तकिया रखे मगन होकर कुछ पढ़ रही थी। उसके सामने और भी दो-एक किताबें रखी हुई थी।

सहसा ललिता को कमरे में आते देखकर सुचरिता ने जैसे लज्जित होकर पहले किताब बंद कर दी, फिर मानो अपनी लज्जा पर ही लज्जित होकर पुस्तक को ज्यों का त्यों रख दिया। ये सब पुस्तकें गोरा की रचनाएँ थी।

उठकर बैठते हुए हरिमोहिनी ने कहा, "आओ, आओ ललिता बेटी, आओ! तुम लोगों का घर छोड़कर सुचरिता का जी कैसा होता रहता है, यह मैं जानती हूँ। जब उसका मन बेचैन होता है तभी वह किताबें लेकर पढ़ने बैठ जाती हैं मैं अभी लेटी-लेटी सोच रही थी कि तुम लोगों में से कोई आ जाता तो अच्छा होता-तभी तुम आ गईं, बड़ी लंबी उम्र है तुम्हारी।"

जो बात ललिता के मन में थी, वही उसने सुचरिता के पास बैठते ही शुरू कर दी। बोली, "सुचि दीदी, हमारे मुहल्ले में लड़कियों के लिए एक स्कूल शुरू किया जाए तो कैसा रहे?"

हक्का-बक्का होकर हरिमोहिनी ने कहा, "लो और सुनो! तुम लोग स्कूल चलाओगी?"

सुचरिता ने कहा, "लेकिन चलेगा कैसे, यह तो बता। कौन हमारी मदद करेगा! बाबा से बात की थी?"

ललिता ने कहा,"हम दोनों तो पढ़ा सकेंगी। शायद बड़ी दीदी भी तैयार हो जाएँ।"

सुचरिता बोली, "सिर्फ पढ़ने भर की तो बात नहीं हैं कैसे स्कूल का काम चलाया जाएगा, इसके सब नियम बनाने होंगे, मकान ठीक करना होगा,छात्र जुटानीं होंगी, खर्च के लिए पैसा जुटाना होगा। हम दो लड़कियाँ यह सब कैसे कर पाएँगी?"

ललिता ने कहा, "दीदी, ऐसा कहने से तो नहीं चलेगा। लड़की होकर जन्म लिया है, क्या इसीलिए जीवन-भर मन मारकर घर में पड़ी-पड़ी कुढ़ती रहेंगी? दुनिया के किसी काम न आएँगी?"

जो दर्द ललिता की बात में था वह सुचरिता के हृदय में भी गूँज गया। वह कुछ उत्तर न देकर सोचने लग गई।

ललिता ने कहा, "मुहल्ले में ही अनेक लड़कियाँ हैं। अगर हम उन्हें यों ही पढ़ाना चाहें तो माँ-बाप खुश ही होंगे। उनमें से जितनी मिल जाएँ उन्हें जुटाकर इसी घर में पढ़ाया जा सकता है- इसमें कौन-सा खर्च लगेगा?

मुहल्ले भर की अपरिचित घरों की लड़कियों को जुटाकर घर ही में पढ़ाने के प्रस्ताव से हरिमोहिनी उद्विग्न हो उठीं। अपनी पूजा-अर्चना लेकर वह तो अलग-थलग शुध्द होकर रहना चाहती हैं, उसमें विघ्न की संभावना से वह आपत्ति करने लगीं।

सुचरिता ने कहा, "डरो मत मौसी, छात्र मिल गईं तो उनका काम हमारे निचले तल्ले के कमरे में ही चल जाएगा, उन्हें हम ऊपर तुम्हारे कमरे में उत्पात करने नहीं लाएँगी। अच्छा ललिता, पढ़ने वाली लड़कियाँ यदि मिल जाएँ तो मैं राज़ी हूँ।"

ललिता ने कहा, "अच्छा, देख ही क्यों न लिया जाय!"

बार-बार हरिमोहिनी कहती रहीं, "बेटी, हर मामले में जब तुम लोग ख्रिस्तानों की तरह हो जाओगी तो कैसे चलेगा? अच्छे घर की लड़कियाँ जाकर स्कूल में पढ़ाएँगी, आज तक यह तो कभी नहीं सुना!"

परेशबाबू के घर की छत से आसपास के घरों की छतों पर खड़ी लड़कियों से बातचीत होती रहती थी। इस परिचय में एक बाधा भी थी, क्योंकि अक्सर आसपास के घरों की लड़कियाँ इस बारे में सवाल पूछती थीं और विस्मय प्रकट करती थीं कि इस घर की लड़कियों का इतनी उम्र हो जाने पर भी अभी तक विवाह क्यों नहीं हुआ? इसीलिए ललिता छत पर की इस बातचीत में भाग नहीं लेती थी। छतों के द्वारा

दोस्ती के इस विस्तार में लावण्य का ही उत्साह सबसे अधिक था। दूसरी गृहस्थियों के हालचाल जानने में उसके कौतूहल की सीमा नहीं थी। पड़ोसियों के रोज़मर्रा जीवन की प्रधान और अप्रधान अनेक बातों की चर्चा दूर से ही हवा के सहयोग से उसके साथ होती रहती थी। अक्सर तीसरे पहर खुले आकाश के नीचे हाथ में कंघी लिए बाल सँवारते-सँवारते उसकी और उसकी सहेलियों की सभा जुटा करती थी।

अपने प्रस्तावित लड़कियों के स्कूल के लिए छात्राएँ जुटाने का भार ललिता ने लावण्य को सौंप दिया। जब छतों पर से लावण्य ने इस प्रस्ताव की घोषणा कर दी तब कई लड़कियाँ उत्साहित हो उठीं। ललिता प्रसन्न होकर सुचरिता के घर की निचली मंज़िल का कमरा झाड़-पोंछकर, धोकर,सजाकर तैयार करने में जुट गई।

लेकिन उसका स्कूल सूना ही रह गया। पढ़ाने के बहाने अपनी लड़कियों को फुसलाकर ब्रह्म घर में ले जाने के प्रस्ताव पर पड़ोसी गृहस्वामी बहुत बिगड़ उठे। यहाँ तक कि जब उन्हें पता लगा कि परेशबाबू की लड़कियों के साथ उनकी लड़कियों की जान-पहचान है और उनमें बातचीत होती रहती है, तब इसे रोकना भी उन्होंने अपना कर्तव्य समझा। उन्हें लड़कियों का छत पर जाना बंद करने का अवसर मिल गया। ब्रह्म पड़ोसी की लड़कियों के साध्य संकल्प के बारे में भी उन्होने जो बातें कहीं वे कुछ प्रशंसा की नहीं थीं। बेचारी लावण्य ने यथा-समय कंघी हाथ में लिए छत पर पहुँचकर देखा, आस-पास की छतों पर नवीनाओं का स्थान प्रवीणाओं ने ले लिया है, और उनमें से किसी से भी वह दो मधुर शब्द न पा सकी।

इससे भी ललिता हताश न हुई। उसने सोचा-बहुत-सी ग़रीब ब्रह्म लड़कियाँ ऐसी हैं जिनके लिए बेथ्यून स्कूल पढ़ने जाना सहज नहीं है, उन्हीं को पढ़ाने का भार लेने से उपकार हो सकता है।

ऐसी छात्राओं की खोज में वह स्वयं भी लगी और सुधीर को भी उसने लगा दिया।

उन दिनों परेशबाबू की लड़कियों के पढ़ने-लिखने की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। यहाँ तक कि यह ख्याति सच्चाई को भी बहुत पीछे छोड़ गई थी। इसलिए यह सुनकर कि ये लड़कियाँ पढ़ाने का अवैतनिक भार लेंगी, अनेक माता-पिता प्रसन्न हो उठे।

शुरू में तो दो-चार दिन के भीतर ही पाँच-छ: लड़कियों को लेकर ललिता का स्कूल चल निकला। परेशबाबू के साथ स्कूल की चर्चा करके उसके नियम बनाने, उसकी व्यवस्था करने आदि में ललिता ने अपने लिए कोई समय ही नहीं छोड़ा। यहाँ तक

कि वर्ष के अंत में परीक्षा के बाद लड़कियों को इनाम कैसे दिए जाएँगे, इसके बारे में ललिता की लावण्य के साथ बाकायदा बहस भी छिड़ गई। जो पुस्तकें ललिता सुझाती थी वे लावण्य को पसंद नहीं थीं और लावण्य की पसंद ललिता को नहीं जँचती थी। परीक्षा कौन-कौन लेंगे, इस पर भी बहस हो गई। लावण्य को यद्‍यपि हरानबाबू बिल्कुल अच्छे नहीं लगते थे तथापि उनके पांडित्य की ख्याति से वह प्रभावित थी। उनको स्कूल की परीक्षा या शिक्षा या किसी एक काम में हरानबाबू के नियुक्त होने से वह स्कूल के लिए विशेष गर्व की बात होगी, इस बारे में उसे ज़रा भी संदेह नहीं था। किंतु ललिता ने सारी बात ही निरस्त कर दी-हरानबाबू के साथ उनके इस स्कूल का किसी प्रकार का संबंध नहीं हो सकेगा। दो-तीन दिन के भीतर ही उसकी छात्राओं की संख्या कम होते-होते अंतत: क्लास सूनी हो गई। ललिता क्लास में अकेली बैठी बैरों की आहट सुनते ही छात्राओं के आने की संभावना से सजग हो उठती,लेकिन कोई आता ही नहीं। इस प्रकार जब दोपहर बीत गई तब उसने समझ लिया कि कहीं कुछ गड़बड़ है।

जिस छात्र का घर उससे नज़दीक था, ललिता उससे मिलने गई। उसने रुँआसी-सी होकर कहा, "माँ मुझे जाने नहीं देतीं।" माँ ने बताया,असुविधा होती है, लेकिन क्या असुविधा है, यह उन्होंने स्पष्ट नहीं बताया। ललिता स्वाभिमानिनी थी, दूसरी ओर से अनिच्छा का ज़रा-सा भी लक्षण देखने पर ज़िद करना या कारण पूछना उससे नहीं होता था।

उसने कहा, "असुविधा होती है तो जाने दीजिए।"

इसके बाद जिस दूसरे घर में ललिता गई वहाँ साफ-साफ बात सुनने को मिली। उन्होंने कहा, "सुचरिता आजकल हिंदू हो गई है, जात-पाँत मानने लगी है, उसके घर ठाकुर-पूजा होती है" इत्यादि।

ललिता ने कहा, "अगर इस कारण से आपत्ति हो तो स्कूल हम लोगों के घर भी चल सकता है।"

लेकिन आपत्ति का निराकरण इससे भी होता नहीं दीखा- और भी कुछ बात थी। और किसी के घर न जाकर ललिता ने सुधीर को बुला भेजा और पूछा, "सुधीर क्या हुआ है, सच-सच बताओ तो?"

सुधीर ने कहा, "पानू बाबू तुम्हारे इस स्कूल का विरोध करने पर लगे हुए हैं।"

ललिता ने पूछा, "क्यों? दीदी के घर मूर्ति-पूजा होती है, इसलिए?"

सुधीर ने कहा, "केवल इसलिए नहीं।"

अधीर होकर ललिता ने पूछा, "और क्या, कह ही डालो!"

सुधीर ने कहा, "बहुत-सी बातें हैं।"

ललिता ने पूछा, "मेरा भी कुछ अपराध है?"

सुधीर चुप रहा। ललिता का चेहरा लाल हो उठा उसने कहा, "यह मेरी उस स्टीमर-यात्रा की सज़ा है। मैंने अगर ग़लत काम भी किया हो तो अच्छा काम करके उसका प्रायश्चित करने का रास्ता हमारे समाज में क्या बिल्कुल बंद हो गया है? क्या मेरे लिए इस समाज में सब शुभ कार्य निषिध्द हैं? मेरी और हमारे समाज की आध्यात्मिक उन्नति का तुम लोगों ने यही रास्ता निकाला है?"

बात को कुछ नरम करने के लिए सुधीर ने कहा, "ठीक इसलिए नहीं। उन्हें यह भी डर है कि कहीं विनय बाबू वगैरह भी आगे चलकर इस स्कूल के साथ न जुड़ जाएँ।"

एकाएक आग की तरह भड़ककर ललिता ने कहा, "वह डर की नहीं भाग्य की बात होगी। योग्यता में विनय बाबू की बराबरी कर सकने वाले उनमें कितने होंगे?"

सुधीर ललिता का गुस्सा देखकर संकुचित होता हुआ बोला, "यह बात तो है। लेकिन विनय बाबू तो...."

"ब्रह्म-समाज के नहीं हैं, यही न! इसीलिए ब्रह्म-समाज उन्हें सजा देगा। मैं ऐसे समाज पर गर्व नहीं कर सकती!"

सुचरिता छात्राओं के बिल्कुल गायब हो जाने से समझ गई थी कि क्या मामला है और कौन इसकी जड़ में है। इस बारे में वह कोई बात न कहकर ऊपर के कमरे में सतीश को उसकी परीक्षा की तैयारी कराने में लग गई थी।

सुधीर से बात होने पर ललिता सुचरिता के पास गई और बोली, "सुना?"

मुसकराकर सुचरिता ने कहा, "सुना तो नहीं, लेकिन समझ सब लिया।"

ललिता ने कहा, "क्या यह सब सह लेना होगा?"

ललिता का हाथ पकड़कर सुचरिता ने कहा, "सह लेने में तो अपमान नहीं है। बाबा कैसे सब सह लेते हैं, यह तुमने नहीं देखा?"

ललिता ने कहा, "लेकिन सुचि दीदी, कई बार मुझे लगता है कि अन्याय को सहना उसे स्वीकार कर लिया जाना है। अन्याय के प्रति उचित व्यवहार यही है कि उसे सहा न जाए।"

सुचरिता बोली, "तो तू क्या करना चाहती है, वह बता!"

ललिता ने कहा, "वह तो मैंने अभी नहीं सोचा- मैं क्या कर सकती हूँ यह भी नहीं जानती- लेकिन कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। हम-जैसी लड़कियों के साथ जो ऐसी नीचता कर रहे हैं वह अपने को चाहे जितना बड़ा आदमी समझते हों, हैं डरपोक ही। उनसे मैं किसी तरह हार नहीं मानूँगी- किसी तरह नहीं, वह जो करना चाहें कर लें।" कहते हुए ललिता ने ज़ोर से पैर पटक दिया।

कोई उत्तर दिए बिना सुचरिता धीरे-धीरे ललिता के हाथ पर हाथ फेरती रही। थोड़ी देर बाद उसने कहा, "भई ललिता, एक बार बाबा से बात करके तो देख।"

ललिता उठ खड़ी हुई, "मैं अभी उनके पास जाती हूँ।"

अपने घर के द्वार के पास पहुँचकर ललिता ने देखा, विनय सिर झुकाए हुए वहाँ से निकल रहा था। ललिता को देखकर विनय चौंककर पल-भर खड़ा रहा-मन-ही-मन तर्क-वितर्क करता रहा कि ललिता से दो-एक बात कर ले या नहीं- फिर अपने को रोककर ललिता की ओर आँखें उठाए बिना उसे नमस्कार करके सिर झुकाए हुए ही चला गया।

मानो ललिता को किसी ने गर्म सलाख से दाग़ दिया हो। वह तेज़ी से भीतर गई और सीधे अपने कमरे में पहुँची। मेज़ के पास बैठी वरदासुंदरी एक लंबा खाता लिए हिसाब में मन लगाने का प्रयत्न कर रही थी।

ललिता का चेहरा देखकर ही वरदासुंदरी के मन में खटका हुआ उन्होंने हड़बड़ाकर हिसाब की कापी में बिल्कुल डूब जाने का ऐसा नाटक किया मानो उसमें कोई रकम है जो ठीक-ठीक मिल न जाने से उनकी सारी गृहस्थी छिन्न-भिन्न हो जाएगी।

कुर्सी खींचकर ललिता मेज़ के पास बैठ गई। वरदासुंदरी ने तब भी मुँह नहीं उठाया। ललिता ने कहा, "माँ!"

वरदासुंदरी बोली, "ठहर बेटी, मैं यह.... " और कापी की ओर और भी झुक गईं

ललिता ने कहा, "मैं ज्यादा देर तंग नहीं करूँगी। बस एक बात जानना चाहती हूँ। विनय बाबू आए थे?"

कापी पर से आँखें हटाए बिना वरदासुंदरी ने कहा, "हाँ।"

"उनसे तुम्हारी क्या बात हुई?"

"वह लंबी बात है।"

"मेरे बारे में कोई बात हुई कि नहीं?"

बच निकलने का कोई उपाय न देखकर वरदासुंदरी ने कलम रख दी और कापी से आँखें उठाकर कहा, "हुई तो थी। मैंने देखा कि बात बढ़ती ही जा रही है, समाज के लोग चारों ओर निंदा कर रहे हैं, इसीलिए चेतावनी देने की ज़रूरत पड़ी।"

ललिता का चेहरा लज्जा से लाल हो आया, उसका सिर मानो झनझना उठा। उसने पूछा, "बाबा ने क्या विनय बाबू को यहाँ आने से मना किया है?"

वरदासुंदरी बोलीं, "वह क्या ये सब बातें सोचते हैं? सोचते होते तो शुरू से ही यह सब कुछ न हो पाता।"

ललिता ने पूछा "पानू बाबू हमारे यहाँ आ सकेंगे?"

आश्चर्य में आकर वरदासुंदरी ने कहा, "लो और सुनो! पानू बाबू क्यों नहीं आएँगे?"

"विनय बाबू ही क्यों नहीं आएँगे?"

वरदासुंदरी ने कापी फिर अपनी ओर खींचते हुए कहा, "ललिता, तुझसे मैं पार नहीं पा सकती। तू जा, अभी मुझ जला मत- मुझे बहुत काम है।"

दोपहर के समय ललिता सुचरिता के घर स्कूल में पढ़ाने जाती है, इसी अवसर से लाभ उठाकर वरदासुंदरी ने विनय को बुलाकर जो कहना था कह-सुन लिया था। उन्होंने सोचा था, ललिता को पता भी न लगेगा। अचानक ऐसे पकड़ी जाकर वह मुश्किल में पड़ गईं। उन्होंने समझ लिया कि इसका परिणाम ठीक नहीं होगा और अब यह मामला आसानी से सुलझेगा भी नहीं। उनका गुस्सा जाकर अपने

गैर-ज़िम्मेदार स्वामी पर ही पड़ा। ऐसे बुध्दू के साथ गृहस्थी चलाना स्त्री की कैसी मुसीबत है!

ललिता हृदय में उमड़ती हुई आँधी लिए चली गई। परेशबाबू निचले कमरे में बैठे चिट्ठी लिख रहे थे, वहाँ जाकर एकाएक ललिता उनसे पूछ उठी, "बाबा, विनय बाबू क्या हम लोगों से मिलने के योग्य नहीं हैं?"

परेशबाबू प्रश्न सुनते ही सारी परिस्थिति समझ गए। उनके परिवार को लेकर उनके समाज में आजकल जो आनंद उठ खड़ा हुआ था वह परेशबाबू से छिपा हुआ न था। उसको लेकर वह काफी चिंतित भी थे। अगर विनय के प्रति ललिता के मन के भाव के बारे में उन्हें कोई शंका न होती, तो केवल बाहर की बातों की ओर वह ज़रा भी ध्यान न देते। लेकिन अगर विनय के प्रति ललिता के मन में अनुराग हो तब उस अवस्था में उनका क्या कर्तव्य है, यह प्रश्न बार-बार वह अपने से पूछते थे। ब्रह्म-धर्म में दीक्षा लेने के बाद से उनके परिवार में यही एक संकट का अवसर आया है। इसीलिए जहाँ एक ओर भय और कष्ट भीतर-ही-भीतर उन्हें कचोट रहे थे, वहाँ दूसरी ओर उनकी सारी चित्त-शक्ति जागृत होकर कह रही थी- ब्रह्म-धर्म गहण करते समय जैसे एक मात्र ईश्वर की ओर ध्यान रखकर कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ था; जैसे सुख, सम्पत्ति, समाज सभी के ऊपर केवल सत्य को स्वीकार करने से जीवन हमेशा के लिए धन्य हो गया थ, अब भी अगर वैसी ही परीक्षा का दिन उपस्थिति हो तो उसी को धारण करके उत्तीर्ण होऊँगा।

परेशबाबू ने ललिता के प्रश्न के उत्तर में कहा, "मैं तो विनय को अच्छा ही समझता हूँ। उनकी जितनी विद्या-बुध्दि है, उतना ही ऊँचा चरित्र भी है।"

थोड़ी देर चुप रहकर ललिता ने फिर कहा, "गौर बाबू की माँ इस बीच दो बार हमारे घर आ चुकी हैं। आज सुचि दीदी के साथ ज़रा उधर हो आऊँ?"

क्षण-भर परेशबाबू जवाब न दे सके। वह निश्चय जानते थे कि इस चर्चा के समय इस तरह आने-जाने से उनकी निंदा को और भी बल मिलेगा। लेकिन उनके मन ने कहा-जब तक यह अन्याय न हो मैं इसका निषेध नहीं कर सकता। वह बोले, "अच्छी बात है, हो आओ। मुझे कुछ काम है,नहीं तो मैं भी तुम लोगों के साथ चलता।"

जिस जगह पर विनय इतने दिनों से यों निश्चिंत भाव से अतिथि और मित्र के रूप में आता-जाता रहा है, उसी के नीचे समाज का ज्वालामुखी फूट पड़ने की तैयारी कर रहा है, स्वप्न में भी उसे इसका गुमान न था। शुरू में परेशबाबू के परिवार से

मिलने-जुलने में उसे बहुत संकोच होता था, कहाँ कितनी दूर तक उसके अधिकार की मर्यादा है, यह निश्चयपूर्वक न जानने के कारण वह सदा डरा-डरा रहता था। धीरे-धीरे जब उसका डर मिट गया,तब वह यह भूल ही गया कि कहीं भी कुछ भी संकट की शंका हो सकती है। आज हठात् यह सुनकर कि उसके व्यवहार के कारण ललिता को समाज के लोगों में निंदित होना पड़ा है, उसके सिर पर मानो वज्र गिर पड़ा। उसके क्षोभ का विशेष कारण यह भी था कि वह स्वयं जानता था,ललिता के संबंध में उसके मनोभाव साधारण बंधुत्व की सीमा पार करके कहीं आगे बढ़ गए थे, और वर्तमान परिस्थिति में दोनों समाजों का मतभेद देखते हुए मन-ही-मन इसे वह अपना अपराध ही समझता था। उसने अनेक बार सोचा था, इस परिवार में विश्वस्त अतिथि के रूप में आकर वह अपने उचित स्थान पर नहीं रह सका- एक स्त पर वह छल कर रहा है और उसके मन का भाव इस परिवार के लोगों पर ठीक-ठीक प्रकट हो जाने पर उसको शर्मिंदा होना पड़ेगा।

ऐसे समय एक दिन दोपहर को जब वरदासुंदरी ने चिट्ठी लिखकर विनय को विशेष रूप से बुला भेजा और पूछा, "विनय बाबू, आप तो हिंदू हैं?"विनय के स्वीकार करने पर जब फिर पूछा, "आप हिंदू-समाज को छोड़ तो नहीं सकेंगे" फिर विनय के यह कहने पर कि वह उसके लिए असंभव होगा, जब वह फिर कह उठीं, "तब क्यों आप.... ?" तब इस 'तब क्यों' का कोई उत्तर विनय को नहीं सूझ पड़ा। सिर झुकाए वह बैठा ही रह गया। उसे लगा, वह पकड़ा गया है, सबके सामने उसकी एक ऐसी बात प्रकट हो गई है जिसे वह चंद्र-सूर्य-वायु तक से छिपाए रखना चाहता था। बार-बार वह यही सोचने लगा कि परेशबाबू न जाने क्या समझते होंगे, ललिता न जाने क्या समझती होगी, सुचरिता भी उसे न जाने क्या समझती होंगी। देवदूतों की किसी भूल के कारण थोड़े दिन इस स्वर्ग-लोक में उसे स्थान मिल गया था, आज अपने अनाधिकार प्रवेश की लज्जा का बोझ सिर पर लादकर उसे यहाँ से निर्वासित हो जाना होगा।

इसके बाद ही परेशबाबू की देहरी पार करते उसने जब ललिता को देखा तब उसने सोचा- ललिता ने अंतिम विदा के इस क्षण में अपना भारी अपराध स्वीकार कर और अपमानित होकर पिछले परिचय का एक समाधान कर देना चाहिए। लेकिन यह कैसे किया जाय यही वह सोच न सका,इसलिए चुपचाप ललिता के चेहरे की ओर देखे बिना नमस्कार करके चला गया।

अभी उस दिन तक परेशबाबू के परिवार के बाहर ही तो था विनय, आज फिर वैसे ही बाहर आ खड़ा हुआ। लेकिन कितना अंतर! यह बाहर आज इतना सूना क्यों है? उसके पहले जीवन में तो कोई कमी नहीं हुई, उसके गोरा, उसकी आनंदमई तो वही हैं। फिर भी उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह जल विहीन हुई मछली है, किसी ओर अपने जीवन का कोई अवलंबन उसे नहीं दीख रहा था। घरों से पटे पड़े इस शहर के भीड़-भरे राजपथ पर सब ओर विनय को अपने जीवन के सर्वनाश का एक धुंधला विवर्ण चेहरा दीखने लगा। इस विश्वव्यापी सन्नाटे और सूनेपन से वह स्वयं आश्चर्यचकित हो गया। क्यों और कब कैसा हुआ, क्यों यह संभव हुआ, यही प्रश्न वह एक हृदयहीन निरुत्तर शून्य से बार-बार पूछने लगा।

"विनय बाबू! विनय बाबू!"

विनय ने पीछे मुड़कर देखा, सतीश था। विनय ने उसे गले से लगा लिया, बोला, "क्यों भाई, क्या है बंधु!"

विनय का स्वर भर्रा उठा था। परेशबाबू के घर के स्नेह में इस बालक का भी कितना योग था यह विनय ने जैसे आज अनुभव किया वैसे पहले कभी नहीं किया था।

सतीश ने कहा, "आप हमारे यहाँ क्यों नहीं आते? कल लावण्य दीदी और ललिता दीदी हमारे यहाँ आएँगी, मौसी ने आपको निमंत्रण देने के लिए मुझे भेजा है।"

विनय ने समझ लिया कि मौसी को कुछ मालूम नहीं है। बोला, "सतीश बाबू, मौसी को मेरा प्रणाम कहना- लेकिन मैं आ तो नहीं सकूँगा।"

अनुनयपूर्वक सतीश ने विनय का हाथ पकड़ते हुए कहा, "क्यों नहीं आ सकेंगे? आपको आना ही पड़ेगा, मैं किसी तरह नहीं छोड़ूँगा।"

सतीश के इतने आग्रह का एक विशेष कारण भी था। स्कूल में उसे 'पशुओं के प्रति व्यवहार' विषय पर एक निबंध लिखने को मिला था, उस निबंध पर उसे पचास में से बयालीस नंबर मिले थे, वही निबंध विनय को दिखाने की उसकी बड़ी तीव्र इच्छा थी। विनय बड़े भारी विद्वान और समझदार हैं, यह वह जानता था उसे विश्वास था कि विनय जैसा रसज्ञ आदमी ही उसके लेख का ठीक मूल्य समझ सकेगा। विनय यदि घोषित कर देगा कि उसकी रचना श्रेष्ठ है तो अरसिक लीला द्वारा सतीश की प्रतिभा के बारे में अवज्ञा प्रकट करने पर स्वयं उसी की हँसी होगी। उसी ने मौसी को कहकर निमंत्रण भिजवाया था; क्योंकि जिस समय विनय उसके लेख के बारे में

अपनी राय प्रकट करे उस समय उसकी दीदियाँ वहाँ उपस्थिति हों,यही उसकी इच्छा थी।

किसी तरह विनय निमंत्रण पर नहीं आ सकेगा, यह सुनकर सतीश बिल्कुल उदास हो गया।

विनय ने उसके गले में बाँह डालकर कहा, "सतीश बाबू, तुम्हीं हमारे घर चलो।"

सतीश का लेख उसकी जेब में ही था, इसलिए विनय का निमंत्रण वह अस्वीकार न कर सका। कवियश: प्रार्थी बालक स्कूल की परीक्षा निकट होने पर भी समय नष्ट करने का रस्क लेकर भी विनय के घर चल पड़ा।

विनय जैसे उसे किसी तरह छोड़ना ही न चाहता था। सतीश का निबंध तो सुना ही, जो प्रशंसा की उसमें भी समालोचक की निरपेक्षता नहीं दिखाई दी। बाज़ार से मिठाई मँगाकर उसने सतीश को जलपान भी कराया।

फिर सतीश को उसके घर के पास तक पहुँचाकर उसने अनावश्यक व्यस्तता दिखाते हुए कहा, "अच्छा सतीशबाबू, चलूँ!"

सतीश उसका हाथ पकड़कर खींचने लगा, "नहीं आप हमारे घर चलिए।"

पर आज इस अनुनय का भी कोई असर नहीं हुआ।

विनय किसी स्वप्न में चलता हुआ-सा आनंदमई के घर जा पहुँचा, लेकिन उनके सामने न जा सका। छत पर के उस सूने कमरे में चला गया जो गोरा का सोने का कमरा था। इसी कमरे में उनकी बचपन की दोस्ती के कितने सुखदायक दिन, कितनी सुखद रातें बीती हैं- कितनी आनंद-भरी बातें, कितने संकल्प, कितने गंभीर विषयों की चर्चा यहाँ हुई है- कितने दोस्ताना झगड़े और उसके बाद कितनी स्नेहपूर्ण सुलह! विनय ने चाहा, अपने को भूलकर फिर उसी पुराने जीवन में प्रवेश कर जाए, लेकिन थोड़े दिनों का नया परिचय उसका रास्ता रोककर खड़ा हो गया; उसने ठीक उसी जगह न लौटने दिया। जीवन का केंद्र कब खिसक गया है और उसकी कक्षा में कितना परिवर्तन आ गया है, यह विनय इतने दिनों से स्पष्ट नहीं समझ सका था, आज जब इस बारे में कोई संदेह न रहा तब वह भयाकुल हो उठा।

छत पर सूखने के लिए कपड़े डाले गए थे, तीसरे पहर धूप ढलने पर आनंदमई उन्हें उठाने आईं तो गोरा के कमरे में विनय को देखकर अचरज में आ गईं। जल्दी से पास

आकर उसके कंधे पर हाथ रखकर बोलीं, "विनय, क्या हुआ है विनय? तेरा चेहरा ऐसा सफेद क्यों हो गया है?"

विनय उठ बैठा। बोला, "माँ, परेशबाबू के घर मैंने जब आना-जाना शुरू किया तब गोरा नाराज़ होता था। तब उसके गुस्से को मैं ज्यादती समझता था। लेकिन वह उसकी ज्यादती नहीं थी, मेरी बेवकूफी थी।"

ज़रा हँसकर आनंदमई ने कहा, "तू बड़ा समझदार लड़का है यह तो मैं नहीं कहती, लेकिन इस मामले में तेरी बुध्दि में क्या दोष तुझे दीखा है?"

विनय ने कहा, "माँ, हमारा समाज बिल्कुल दूसरा ही है- यह बात तब मैंने बिल्कुल नहीं सोची थी। उनकी दोस्ती से, व्यवहार से और उदाहरण से मुझे बड़ा आनंद होता था और लगता था कि उपकार भी होता है, इसी कारण मैं आकृष्ट हुआ था। और भी बातें सोचने की हो सकती हैं, यह मुझे कभी सूझा ही नहीं।"

आनंदमई बोलीं, "मुझे तो तेरी बात सुनकर अब भी वह नहीं सूझता।"

विनय ने कहा, "माँ, तुम नहीं जानतीं, समाज में मैंने उन सबके बारे में बड़ी अशांति पैदा कर दी-लोग ऐसी बुराई करने लगे हैं कि मैं अब वहाँ.... "

आनंदमई ने कहा, "गोरा बार-बार एक बात कहा करता है, वह मुझे बहुत खरी लगती है। वह कहता है, जहाँ भीतर कहीं अन्याय हो वहाँ बाहर शांति रहना ही सबसे बड़ा अनिष्ट है। उनके समाज में अशांति फैली भी तो तेरे पछताने की तो कोई ज़रूरत मुझे नहीं दीखती-उससे फायदा ही होगा,देख लेना। तेरा अपना व्यवहार सच्चा रहे यही काफी है।" लेकिन इसी के बारे में तो विनय के मन में खटका था। उसका अपना व्यवहार बुराई से परे है कि नहीं, यही तो वह किसी तरह निश्चित नहीं कर पा रहा था। ललिता जब दूसरे समाज की है, उसके साथ विवाह जब सम्भव ही नहीं है, तब उसे प्रति उसका अनुराग ही उसे एक छुपे पाप-सा अखर रहा था। और यह सोचकर कि इसी घोर पाप के प्रायश्चित का समय आ उपस्थिति हुआ है,मन-ही-मन वह दुखी हो रहा था।

हठात् वह कह उठा, "माँ, शशिमुखी के साथ मेरे विवाह का जो प्रस्ताव हुआ था वह हो-हुआ गया होता तो ठीक ही हुआ होता। जो मेरी सही जगह है वहीं बाँध रखना ही ठीक है- ऐसा हो कि मैं वहाँ से ज़रा भी हिल न सकूँ।"

हँसकर आनंदमई ने कहा, "यानी शशिमुखी को अपने घर की बहू न बनाकर अपने गले का फंदा बनाकर रखना चाहता है- वह तो जैसे शशि का बहुत बड़ा सौभाग्य होगा न!"

इसी समय बैरे ने आकर सूचना दी कि परेशबाबू के घर से दो लड़कियाँ आई हैं। सुनकर विनय का दिल ज़ोर से धड़कने लगा। उसने समझा, वे आनंदमई के पास शिकायत लेकर आईं हैं कि विनय को चेतावनी दे दी जाए। वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और बोला, "मैं जा रहा हूँ, माँ!"

आनंदमई ने भी उठकर उसका हाथ पकड़ते हुए कहा, "बिल्कुल घर से ही मत चले जाना, विनय! थोड़ी देर निचले कमरे में चलकर बैठ!"

नीचे जाते-जाते बार-बार विनय कहने लगा, "इसकी तो कोई आवश्यकता नहीं थी। जो हो गया सो तो हो गया, अब तो मैं मरकर भी वहाँ जाने वाला नहीं था। अपराध की सज़ा जब आग की तरह भड़क उठती है तब अपराधी के जलकर राख हो जाने पर भी सज़ा की आग मानो बुझना ही नहीं चाहती!"

सड़क की ओर निचली मंज़िल में गोरा का जो कमरा था, विनय उसमें प्रवेश करने ही जा रहा था कि महिम अपनी चपकन के बटनों के बंधन से अपनी तोंद को अज़ाद करते हुए ऑफिस से घर लौट आए। विनय का हाथ पकड़कर बोले, "अरे, यह तो विनय है। बहुत अच्छा हुआ-मैं तुम्हीं को ढूँढ़ रहा था।" कहते-कहते विनय को वह गोरा के कमरे में ले गए और उसे कुर्सी पर बैठाकर स्वयं भी बैठ गए। जेब से डिब्बा निकालकर उन्होंने फौरन एक पान विनय को दिया। "अरे, तम्बाकू लाना रे!" की पुकार लगाकर उन्होंने फौरन काम की बात चलाई। पूछा, "उस मामले का क्या तय हुआ? और तो.... "

उन्होंने ध्यान दिया, विनय का भाव पहले से कहीं नरम है। कोई विशेष उत्साह दीखा हो ऐसा तो नहीं है, लेकिन जैसे-तैसे बहाना करके बात को टाल देने की चेष्टा भी नहीं जान पड़ती। महिम ने उसी समय तिथि-मुहूर्त सब पक्का कर लेना चाहा। विनय ने कहा, "गोरा तो लौट आए।"

आश्वस्त होकर महिम ने कहा, "वह तो अब दो-चार दिन की बात है। विनय, कुछ जलपान लाने को कह दूँ- क्या राय है? आज तुम्हारा चेहरा बहुत सूखा हुआ जान पड़ता है। तबीयत तो ठीक है न?"

विनय ने जलपान के बोझ से छुटकारा पा लिया तो महिम अपनी क्षुधा-शांति के लिए भीतर चले गए। विनय गोरा की मेज़ से यों ही कोई पुस्तक उठाकर पन्ने पलटने लगा, फिर किताब फेंककर कमरे में एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलने लगा।

बैरे ने आकर कहा, "माँ बुला रही हैं।"

विनय ने पूछा, "किसे बुला रही है?"

बैरा बोला, "आपको।"

विनय ने पूछा, और सब लोग हैं?"

बैरे ने कहा, "हाँ, हैं।"

विनय इस तरह ऊपर चला जैसे बच्चे परीक्षा भवन की ओर जाते हैं। कमरे के दरवाजे तक पहुँचकर वह कुछ इधर-उधर कर ही रहा था कि सुचरिता ने सदा की भाँति सहज सौहार्द-भरे स्निग्ध स्वर से कहा, "आइए, विनय बाबू!"

यह स्वर सुनकर विनय को ऐसा लगा जैसे उसने कोई अप्रत्याशित निधि पा ली हो।

विनय के कमरे को ऐसा लगा जैसे उसने कोई अप्रत्याशित निधि पा ली हो।

विनय के कमरे में आने पर उसे देखकर सुचरिता और ललिता अचंभे में आ गईं। उसे कितनी गहरी चोट पहुँची है, इसके चिह्न थोड़े समय में ही उसके चेहरे पर अंकित हो गए थे। सदा हँसते रहने वाला विनय का चेहरा एकाएक ऐसा हो गया था मानो लहलहाते खेत पर अचानक टिड्डी-दल आक्रमण करके आगे बढ़ गया हो। ललिता के मन में व्यथा और करुणा के साथ-साथ एक आनंद का भी आभास दिखाई पड़ा।

और दिन ललिता सहज ही विनय के साथ बातचीत शुरू नहीं करती थी, लेकिन आज जैसे ही विनय ने कमरे में प्रवेश किया वसे ही वह कह उठी, "विनय बाबू, आपसे हमें एक सलाह करनी है।"

मानो हठात् कहीं से विनय के हृदय में आनंद का एक शब्द-वेधी बाण आ लगा। वह उल्लास से भर उठा। उसका फीका उदास चेहरा पल-भर में ही चमक उठा।

ललिता ने कहा, "हम सब बहनें मिलकर लड़कियों का एक छोटा स्कूल चलाना चाहती हैं।"

उत्साहित होकर विनय ने कहा, "लड़कियों का स्कूल चलाना तो मेरे जीवन का एक बहुत पुराना संकल्प है।"

ललिता ने कहा, "आपको इस मामले में हम लोगों की मदद करनी होगी।"

विनय ने कहा, "मुझसे जो कुछ हो सकेगा उसमें कोई चूक नहीं होगी। मुझे क्या करना होगा, बताइए!"

ललिता ने कहा, "हम लोग ब्रह्म हैं, यह सोचकर हिंदू अभिभावक हमारा विश्वास नहीं करते। इसके लिए आपको यत्न करना होगा।"

खिलकर विनय ने कहा, "आप बिल्कुल चिंता न करें, यह मैं देख लूँगा।"

आनंदमई ने कहा, "आप बिल्कुल चिंता न करें, यह मैं देख लूँगा।"

आनंदमई ने कहा, "यह काम यह अच्छी तरह कर सकता है। लोगों को बातों में उलझाकर मोह लेने में इसके समान कोई नहीं है।"

ललिता ने कहा, "स्कूल का काम किस नियम से, किस ढंग से चलाना चाहिए, समय का विभाजन, क्लासों की व्यवस्था, कौन-कौन-सी पुस्तकें पढ़ाई जाएँगी, यह सब भी आपको ही करना होगा।"

विनय के लिए यह काम भी मुश्किल नहीं था। लेकिन वह उलझन् में पड़ गया। वरदासुंदरी ने अपनी लड़कियों से मिलने-जुलने से उसे मना कर दिया है, और समाज में उसके विरुध्द जो आन्दोलन चल रहा है, यह बात क्या ललिता बिल्कुल नहीं जानती? इस स्कूल के बारे कें ललिता का आग्रह मानकर विनय वचन दे दे तो वह अनुचित होगा या नहीं और ललिता के लिए अनिष्टकर होगा या नहीं, ये प्रश्न उसे कचोटने लगे। दूसरी ओर अगर ललिता किसी शुभ काम में उसका सहयोग चाहती है तो यह कैसे हो सकता है कि वह पूरी निष्ठा से उस अनुरोध का पालन न करे?

इधर सुचरिता भी अचरज में आ गई थी। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि ललिता हठात् इस ढंग से लड़कियों के स्कूल के बारे में विनय से अनुरोध कर उठेगी। एक तो यों ही विनय को लेकर काफी समस्या पैदा हो गई है, उस पर और नई समस्या! ललिता सब समझकर जान-बूझकर ऐसा कर रही है, यह देखकर सुचरिता डर गई। ललिता के मन में विद्रोह उदित हुआ है, यह तो उसने समझ, लेकिन इस झंझट में विनय को घसीटना क्या उसके लिए उचित है? कुछ चिंतित होकर सुचरिता

ने कहा, "इस बारे में एक बार बाबा से भी तो सलाह करनी होगी। कहीं अभी से विनय बाबू यह उम्मीद न लगा बैठें कि उन्हें लड़कियों के स्कूल की इंस्पेक्टरी मिल गई।"

सुचरिता चतुराई से प्रस्ताव को टालना चाह रही है, यह विनय समझ गया। इससे उसके मन में और भी खटका हुआ। यह साफ समझा जा सकता है कि जो संकट आ खड़ा हुआ है उसे सुचरिता जानती है, तब निश्चय ही वह ललिता से भी छिपा नहीं है, तब ललिता क्यों कुछ भी उसकी समझ में नहीं आया।

ललिता ने कहा, "बाबा से तो पूछना ही होगा। विनय बाबू राज़ी हैं, यह जानकर ही तो उनसे कहूँगी। वह कभी एतराज नहीं करेंगे- उन्हें भी हमारे इस विद्यालय में शामिल होना होगा।"

फिर उसने आंनदमई की ओर मुड़कर कहा, "आपको भी हम नहीं छोड़ेंगी।"

हँसकर आनंदमई ने कहा, "मैं तुम्हारे स्कूल में झाड़ू लगा आया करूँगी। इससे ज्यादा मैं और क्या कर सकती हूँ भला!"

विनय ने कहा, "इतना ही बहुत होगा माँ! तब विद्यालय बिल्कुल निर्मल हो जाएगा!"

विदा लेकर सुचरिता और ललता के चले जाने पर विनय भी फौरन पैदल ही ईडन गार्डन की सैर को निकल पड़ा। महिम ने आनंदमई के पास जाकर कहा, "विनय तो देखता हूँ काफी राज़ी हो चला है, अब जितनी जल्दी हो सके काम निबटा देना ही अच्छा है-कौन जाने कब फिर उसकी राय बदल जाए।"

महिम ने कहा, "आज ही मेरे साथ उसकी बातचीत तय हो गई है, उसने कहा है, गोरा के आते ही दिन ठीक किया जाएगा।"

सिर हिलाकर आनंदमई ने कहा, "महिम, तुम ग़लत समझे हो, यह मैं निश्चय से कह सकती हूँ।"

महिम ने कहा, "मेरी अकल कितनी भी मोटी हो, सीधी-सीधी बात समझने लायक उमर मेरी हो गई है, यह तुम मानो।"

आनंदमई ने कहा, "बेटा तुम नाराज़ होगे यह मैं जानती हूँ, लेकिन मुझे दीख रहा है कि इसको लेकर एक मुश्किल खड़ी होगी।"

गंभीर चेहरा बनाकर महिम ने कहा, "मुश्किल खड़ी करने से ही मुश्किल खड़ी होती है।"

आनंदमई ने कहा, "महिम ने कहा, "महिम, मुझे तुम लोग चाहे जो कहो मैं सह लूँगी, लेकिन जिस बात से ज़रा भी अशांति हो सकती है उसमें मैं योग दे सकती। यह तुम्हीं लोगों के भले के लिए है।"

कठोर होकर महिम ने कहा, "हम लोगों के भले का जिम्मा हमारे ही ऊपर छोड़ दो तो तुम्हें भी कुछ न सुनना पड़े और शायद हमारा भी भला ही हो। बल्कि शशिमुखी का ब्याह हो जाने दो, उसके बाद ही हमारे भले की चिंता करो तो कैसा रहे?"

और कुछ न कहकर आनंदमई ने एक लंबी साँस ली। महिम जेब से डिब्बा निकालकर एक पान मुँह में रखकर चबाते-चबाते चले गए।

—— X ——

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय